अमिद-बिंदू

[अमृत-बिंदु]

:: सूत्रकार ::

पट्टाचार्य 108 श्री विशुद्धसागर जी यतिराज

:: प्राकृतानुवाद ::

श्रुतप्रिय श्रमणरत्न 108 श्री अप्रमितसागर जी

:: प्रकाशक ::

समर्पण समूह

जैनं वचनं सदा वंदे

आशीषानुकंपा	:	गणाचार्य 108 श्री विरागसागर जी यतिराज
सूत्रकार	:	पट्टाचार्य 108 श्री विशुद्धसागर जी यतिराज
ग्रन्थ	:	अमिद-बिंदू [अमृत-बिन्दु]
प्राकृतानुवाद	:	श्रुतप्रिय श्रमणरत्न श्री अप्रमितसागर जी मुनिराज
संपादन	:	श्रुतसंवेगी महाश्रमण श्री आदित्यसागर जी मुनिराज
पूर्णावलोकन	:	सहजानंदी श्रमणरत्न श्री सहजसागर जी मुनिराज
संस्करण	:	प्रथम : 1008 प्रति / 2025
प्रकाशन एवं प्राप्ति स्थान	:	समर्पण समूह, भारत सागर – 97552-86521 भोपाल – 91790-50222 जबलपुर – 98276-07171 इन्दौर – 98260-10104 इन्दौर – 94253-16840 भीलवाड़ा – 63766-49881
मुद्रक	:	गुरु आशीष ग्राफिक्स अंकित जैन शास्त्री, मड़देवरा, सागर मो. : 9755286521, 8302070717

शुभाशीष

सर्वलोक का नेत्र सत्यार्थ तत्त्व बोधक आगम है, जो कि लोकालोक का प्रकाशक है। बिना आगम ज्ञान के जीवन अंधकारमय है। संपूर्ण विश्व परिवर्तन की क्षमता ग्रंथों में होती है। विचारों की दशा को समीचीन मार्ग दिखाने वाला कोई है तो वह सत्यार्थ बोध है। जिसके लिये रहस्यमय गुण पूर्ण गूढ़ साहित्य की अनिवार्यता है।

इस भाव से **''सम्यक् विचार''** एवं **''अमृतबिंदु''** कृति का सृजन किया। साथ ही **''सम्यक् नीति काव्य''** ये तीनों ही कृतियाँ हैं। बालकों से वृद्धों को पठनीय हैं। ज्ञान पिपासु भव्यों को पल-पल में इनका पठन-पाठन करना चाहिये। संसार का सर्वश्रेष्ठ शौक अध्ययन है। अध्ययनशील व्यक्ति गूढ़ आनंद का अनुभव है।

आचार्य गुरुवर विरागसागर जी की भावना मूर्ति रूप दृष्टिगोचर हो रही है। उनहोंने कहा था सोनागिर सिद्धक्षेत्र मध्यप्रदेश के मार्ग में—**'मेरा भाव है एक दिन ऐसा होगा क्षुल्लक यशोधरसागर जी जब संपूर्ण देश हमारे शिष्य प्रशिष्य स्याद्वाद, अनेकांत वाणी का शंखनाद करेंगे और आगमों पर गूढ़ लेखनी भी चलायेंगे।' वह दिख रहा है।**

उनके शिष्यगण एवं प्रशिष्य नवीन-नवीन कृतियाँ विश्ववसुंधरा को प्रदान कर रहे हैं। प्रसन्नता का विषय है—**अंतेवासिन् श्रुत एवं संघ धर्म धर्मात्मा के प्रति संवेग भावयुक्त, वैयावृत्ति में कुशल, श्रमण मुनि श्री अप्रमित सागर जी ने अपनी प्रज्ञा एवं लेखनी से ''अमृतबिंदु'' नीति ग्रंथ को विश्व प्रसिद्ध प्राचीन भाषा प्राकृत भाषा में अनुवाद कर प्राकृत वाङ्मय की वृद्धि की है।**

वे इसी प्रकार से लघुकाय-दीर्घकाय ग्रंथों का प्राकृत में अनुवाद करते रहें। भाषा एवं सिद्धांतों का संरक्षण एवं संवर्धन करते रहें। ऐसे सुधी श्रमणों के लिये सभी को उत्साहशक्ति प्रदान करनी चाहिये। लेखक भारत का भूषण है। उन्हें मंगलाशीष। इसीप्रकार से जिनवाणी की सेवा करते रहें।

।। ॐ नमः सिद्धेभ्यः ।।

मंगलविहार **पट्टाचार्य विशुद्धसागर मुनि**
ऊन प्रवास की ओर
27 मार्च 2025
महाराष्ट्र, भारत

मंगलभावना

श्रमण संस्कृति में जैन तत्त्व-वाङ्मय विभिन्न प्रमेयों में समुपलब्ध है। इसमें कहीं सिद्धान्त, नय, न्याय, अध्यात्म, भक्ति आदि का विषय दृश्यमान होता है, तो कहीं व्याकरण, छन्द, अलंकार, वास्तु, ज्योतिष, नीति, आचरण आदि विषयक तत्त्व दृश्यमान होते हैं।

प्राकृत भाषा में लिखा गया जैन तत्त्व-वाङ्मय अत्यन्त विशाल तथा गम्भीर है। पूर्वाचार्यों ने अपने शुभोपयोग के बहूपयोगी स्वसमय को व्यय करके हमें तत्त्वज्ञान प्रदान किया है।

इसी सुमंगल परंपरा को वर्तमान में वर्धमान एवं जयवंत कर रहे हैं, **कलिकाल के वर्धमान शताब्दी देशनाचार्य, अभिजात-जैनाचार्य पूज्यपाद गुरुदेव भगवन् पट्टाचार्य विशुद्धसागर जी के प्रियाग्र ममानुज श्रुतसंवर्धक श्रुतश्रमी श्रुतप्रिय श्रमणरत्न अप्रमितसागर जी। मुनि श्री दीर्घ तपस्वी हैं, आशु कवि हैं, कोकिलाकंठ हैं, बहुश्रुतज्ञ हैं तथा श्रुतसेवा के लिये सहस्त्र प्रतिशत उद्यम कर रहे हैं।**

इसी ही सुमंगल परिणति का प्रतिफल है कि—यह **''अमृतबिन्दु''** कृति जो कि स्वयं गुरुदेव कृत है। इस कृति का प्राकृतानुवाद करके मुनि श्री अप्रमितसागर जी ने जिनशासन नमोस्तुशासन का तथा जिनवाग्वादिनी का अभिवर्धन किया है।

ये मेरा सौभाग्य रहा कि—मुझे इस लघुकाय महत्प्रमेय युत ग्रन्थ का अवलोकन एवं संपादन करने का सु-अवसर प्राप्त हुआ। **गुरुदेव के प्रिय एवं सर्वजनप्रसिद्ध, ममानुज श्रुतप्रिय श्रमण ऐसे ही जिनवाणी की सेवा निस्स्वार्थभाव से करते रहें।**

।। णमो णमो सिद्ध साहूणं ।।

31/3/2025
गुरुदेव के 18 वें
आचार्य पदारोहण दिवस पर
इंदौर

विशुद्धपदाकांक्षी
श्रुतसंवेगी महाश्रमण आदित्यसागर

मेरी अमृत भावना

आधुनिक युग में जहाँ लोग लौकिकता की ओर अंधाधुंद दौड़ लगा रहे हैं, जबकि उन्हें अलौकिकता की ओर कदम बढ़ाना चाहिये। जहाँ लोग सुखामृत का अन्वेषण कर रहे हैं वास्तव में वहाँ केवल और केवल सुखाभास ही है। वास्तविक सुख का अमृत तो केवल निज के ही पास है, जहाँ पर पुरातन आचार्यों की दृष्टि सदा से अग्रणी रही है

इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुये **मेरे परम श्रद्धा के केन्द्र, आराधनीय, पूज्यनीय, भव्यवत्सलभाव से संयुजित, सबके हृदय कमल पर भगवान की तरह ही विराजमान रहने वाले, पट्टाचार्य गुरुवर 108 श्री विशुद्धसागर जी यतिराज ने** अपने आत्मसुखामृत से अल्प बूंदें सुधी पाठक जनों को **''अमृतबिंदु''** के रूप में प्रदान की हैं, जिससे वह भी अपने आत्मसुखामृत का अनुभवन कर सकें।

इस कृति को **प्राकृतमार्तंड, प्राकृतविद्या व्यसनी प्राकृतविद्या प्रदाता, सर्व जनहितैषी साधक, श्रुतसंवेगी महाश्रमण 108 श्री आदित्यसागर जी महाराज ने** संपादित करके और भी अमृतमय कर दिया।

मेरा अहो! अहो! अहो! सौभाग्य रहा कि—**मुझ लघुश्रमण अल्प श्रुतधी को जैनदर्शन की प्राकृत भाषा में इस अद्भुत कृति में अनुवाद करने का अवसर प्रदान किया गया।**

अंत में केवल यही भावना है कि—जैसे-जैसे अज्ञान हटता है, वैसे-वैसे ज्ञान बढ़ता है; मैं भी अपना संपूर्ण अज्ञान हटाकर कैवल्यज्ञान को प्रस्फुटित करूँ।।

।। विशुद्धात्मने नमः ।।

आचार्य पदारोहण दिवस
31 मार्च 2025
इंदौर (म.प्र.), भारत।

विशुद्धगुणाकांक्षी
श्रुतप्रिय अप्रमितसागर मुनि

अमृत-बिंदु

1. **बंधस्स बंधणमुत्तीए पहुदसं पगडेदि णेव मेत्तं पहुवंदणाए॥**

   भगवान् की वंदना मात्र से भगवान् नहीं बन सकते। बंध के बंधन की मुक्ति से ही भगवान् बना जा सकता है।

---

2. **जगदीए जेट्ठुअम-अवगुणी सोचेव, जस्स जिब्भा गुणिस्स गुणकहणम्हि संकुचेदि॥**

   जगत में सबसे बड़ा अवगुणी वही है, जिसकी जिह्वा गुणी के गुण कहने में हिचकती है।

---

3. **आदसहावं परभावादो भिण्णं परदव्वं किंचिवि मज्झं णत्थि। एव्व आकिंचणधम्मो॥**

   आत्मा का स्वभाव पर-द्रव्यों से भिन्न है। पर-द्रव्य किंचित् भी मेरे नहीं हैं। आकिंचन धर्म यही है।

---

4. **जे सण्णाओ सण्णाणेणं सण्णातीदो करेदि, सो मोक्खमग्गी। मोक्खमग्गो दु उवेक्खामग्गो॥**

   जो संज्ञाओं को संज्ञान से संज्ञातीत कर लेता है, वह मोक्षमार्गी होता है। मोक्षमार्ग तो उपेक्षा का मार्ग है।

---

5. **मोक्खमग्गम्हि मोक्खकामणं णवि कीरिज्जदे, अवित्त भावणं भावेदि। मोक्खमग्गी दु आद-आराहणाए संलग्गेदि॥**

मोक्षमार्ग में मोक्ष की कामना नहीं की जाती, वरन् भावना भाई जाती है। मोक्षमार्गी तो आत्म-आराधना में लगा रहता है।

---

6. **पज्जायधूमो एगहुत्तं हि णिगसेहिदि, किण्णु सगीय-परिणामाणं चिदाधूमो ण जाणेज्जा कदिहुत्तं फेडिज्जदे॥**

पर्याय का धुआँ एक बार ही निकलेगा, पर अपने परिणामों की चिताओं का धुआँ न जाने कितनी बार निकालते रहते हो।

---

7. **संजमे लोगायारो तहा लोगायारे संजमो णत्थि॥**

संयम में लोकाचार नहीं होता तथा लोकाचार में संयम नहीं होता।

---

8. **पत्तं पीदिं आहरेदि। जिणवाणी-पत्तं कहेदि- कदावि कुओ रायं ण कुणेहि, बंधकारणं रागो हि णेव वत्थुं; जो तुज्झ भव-भवादो परिभमेदि॥**

पाती प्रीति लाती है। जिनवाणी की पाती कह रही है कि कभी किसी से राग न करियो, बंध का कारण वस्तु नहीं यह राग ही है, जो तुझे भव-भव से भटका रहा है।

---

9. **कोसालये आवूरित्तु मुंचेहिसि, तहवि पाणीजणा तुवं संजलंति, तम्हा कोसपच्छादु दयाधम्मकोसं रित्तं मा मुंचेहि॥**

कोषों को भरकर छोड़ जाओगे, तो भी लोग तुम्हें कोस सकते हैं, सो कोषों के पीछे दयाधर्म के कोष खाली मत छोड़ जाना।

---

10. **कोसपच्छादु कदिजणा संजलेसि। णिय-संबंधीसुं णियत्तं णवि झलेदि। एयकुक्खीए आगच्छेसि, किण्णु अयं कोसो कदि-भेयं कारिज्जदे॥**

कोष के पीछे कितनों को कोसते हो। सगे-सगों में सगापन नहीं झलकता। एक कोख से आये हो, पर इस कोष ने कितना भेद करा डाला?

---

11. **चरिचावंतो मेत्तं अणुगज्जेदि, किण्णु तस्स पूया णवि होदि। चरियावंतो मोणं होदि तावं तु पूया होदि। चरिचाए णाणं वा णिव्वाणं णवि होदि, संजमस्स चरियाए हि णाणं णिव्वाणं च पत्तेहिदि॥**

चर्चावाला केवल चिल्लाता है, परन्तु उसकी पूजा नहीं होती। चर्यावाला मौन रहता है, तब भी पूजा होती है। चर्चा से ज्ञान या निर्वाण नहीं होता, संयम की चर्या से ही ज्ञान व निर्वाण प्राप्त होगा।

---

12. हे मुमुक्खू! पावपंकजुत्त-वीहीसुं कुदो हिंडेसि? रायमग्ग-गमणं सुसिक्खेहि। रदणत्तयमग्गो रायमग्गो, अयं अम्हे सिवालयं पडि अवहरेदि॥

हे मुमुक्षु! पाप की कीचड़ वाली गलियों में क्यों भटक रहे हो? राजमार्ग से चलना सीखो। रत्नत्रय का मार्ग राजमार्ग है, यह हमें शिवालय की ओर ले जाता है।

---

13. पवित्तीए णिवित्ती सउचधम्मो। अदिंदियसत्तिजुत्तो सव्वत्थसिद्धिरहो अम्हे समीवं, पुणो अम्ह किमु परिग्गहम्हि लीणा॥

प्रवृत्ति की निवृत्ति हो जाना शौचधर्म है। अतीन्द्रियशक्ति से युक्त, सर्वार्थसिद्धि का रथ हमारे पास है, फिर हम क्यों क्षुद्र परिग्रह में लीन हैं?

---

14. पाविस्स जावं पुण्णणियोगो, तावं तस्स पावं णवि पगडेदि; किण्णु जदा पुण्णं णस्सेहिदि तदा पावी अहिहरेहिदि हि॥

पापी के जब तक पुण्य का नियोग है, तब तक उसका पाप प्रगट नहीं होता, पर जब पुण्य समाप्त हो जायेगा, तब पापी पकड़ा ही जायेगा।

---

15. जो सिवं जाणेदि, सो सवं पस्सिदूण कदावि ण आकंदेदि खायिग-सम्मदिट्ठि-रामो अप्प-सहोदर-लक्खमणस्स सवं छम्मासपज्जंतं रोच्छीअ, तदा सो सिवं विसरीअ॥

जो शिव को जानता है, वह शव को देखकर कभी रोता नहीं है। क्षायिक सम्यक्दृष्टि जीव-राम अपने भाई लक्ष्मण के शव को लिये छह माह तक विलाप करते रहे, तब वे शिव को भूल गये थे।

---

16. संबंधीहिं तु सव्वे पीदीए भासेंति, किण्णु जो अण्णेहिं पि णियत्तेहिं भासेदि, सा जिणवाणी-भासा॥

अपनों से तो सभी प्रेम से बोलते हैं, परन्तु जो परायों से भी अपनेपन से बोले वह जिनवाणी की भाषा है।

---

17. संजमो दु पालणस्स धम्मो, सवण-सावणस्स णो। असंजमस्स पालणम्हि जो पलेदि, सो णयरम्हि दुक्खं पत्तेदि॥

संयम तो पालने का धर्म है, सुनने-सुनाने का नहीं। असंयम के पालने में जो पलता है, वह नर्क में दुःख पाता है।

---

18. जीवस्स अहिणाणं अवगाहणादो वा वण्णादो णो, अवित्त तस्स वाणीए होदि। वाणिं कदावि बाणं मा कुण, वीणं कुण॥

व्यक्ति की पहचान कद से या वर्ण से नहीं वरन् उसकी वाणी से होती है। वाणी को कभी बाण मत बनाना, वाणी को वीणा बनाना।

---

19. जं पमाणं तमेव पणामं, जं अप्पमाणिदं, तं णोपणामं। जं तित्थयरमहावीरो भासेदि- तं कहणं पमाणिदं॥

जो प्रमाण होता है, उसे प्रणाम होता है, जो प्रमाणित नहीं, उसे प्रणाम नहीं। जो तीर्थंकर महावीर ने कहा है, वह कथन प्रमाणित है।

---

20. जो चरियापुव्वगं चरिचं करेदि, तस्स चरिचा पूजणीया। भयवं महावीरो जो भासेदि, तम्हि सयं सो जीवेदि, तम्हा सो पुज्जत्तं लहेदि॥

जो चर्यापूर्वक चर्चा करता है, उसकी चर्चा पूजनीय होती है। भगवान महावीर ने जो कहा है, उसमें वे स्वयं जिये हैं, इसलिये वे पूज्यता को प्राप्त हैं।

---

21. सामयिगे णिय-सम-विसमभावा णिरक्खेहि तहा णिएणं पुच्छ- मे आकंखादो आकिंचण-धम्मं किमु मुंचिज्जा?॥

सामायिक में अपने सम और विषम भावों को निहारो और स्वयं से पूछो कि मैंने आकांक्षाओं के पीछे आकिंचन धर्म को क्यों छोड़ दिया?

---

22. किंपि कज्जं पारंभस्स पुव्विं संविचारेदव्वं, तदेव कज्जं पारंभेदव्वं, पुणो तं विउलकट्ठ-आगमे णवि मुंचेदव्वं॥

किसी भी कार्य को प्रारंभ करने के पूर्व अच्छी तरह सोच लेना चाहिये, तभी कार्य प्रारंभ करना चाहिये, फिर उसे कितनी भी कठिनाइयाँ आने पर नहीं छोड़ना चाहिए।

---

23. णियाणंदसहावो हि भगवदसरूवो॥

निजानंद स्वभाव ही भगवत् स्वरूप है।

---

24. अज्जपज्जंतं जा अणुभूदी आसी, सा पराहीणा, किण्णु संजमाणुभूदी दु साहीणा। संजमाणुभूदीए अम्ह अवरादु अवगच्छेज्जा॥

अभी तक जो अनुभूति थी, वह पराधीन थी, परन्तु संयम की अनुभूति तो स्वाधीन है। संयम की अनुभूति के लिये हमें पर से दूर होना पड़ेगा।

---

25. सुदवंदणा देसणालद्धीए कज्जं कुव्वेहिदि। पत्तेय-पकोट्ठे णमोयारमंतं आगुंजावेहि तहा सव्वत्थ जिणवाणिं अज्झेहि, एवं जदा मरणं हुज्जा दु पकोट्ठवग्गणाओ सगस्स कज्जं करेज्जा॥

श्रुत-वंदना देशना-लब्धि का कार्य करेगी। प्रत्येक कमरे में णमोकार का मंत्र गुंजाना तथा कोने-कोने में जिनवाणी पढ़ना, ताकि जब मरण हो तो कमरे की वर्गणायें स्वयं के काम आयें।

---

26. आयरियो वि एय-रुक्खो, जेसिं चारित्तसंजम-रूव-साहाओ हुंति॥

आचार्य भी एक वृक्ष हैं, जिनकी चारित्र व संयम रूपी शाखायें हैं।

---

27. वियोगो आउकम्मस्स होदु, चिंता णत्थि। जो कसाया णस्सेदि, तस्स मोक्खो णिच्छिदो॥

वियोग आयुकर्म का हो, चिंता नहीं है। जिसने कषायों को भगा दिया, उसका मोक्ष निश्चित है।

---

28. जीवणस्स णिहिलआऊ णस्सीअ एवं लाहो किंचण णो, किंचिवि णत्थि। सास-गहणे सासो णिस्सरीअ एवं चिंतणं पि ण किदं तुमं कदा मणुस्सो आसी॥

जीवन की पूरी आयु छिन गई और मिला कुछ नहीं, कुछ भी तो नहीं। श्वास लेते-लेते ही श्वास निकल गई और सोच भी न पाया कि तू कभी मनुष्य था।

---

29. णिय-पुण्णं णिरक्खेहि, ण दु पोग्गलं। जदि पुण्ण-मणिणो संति, दु जिणवाणी अहिकोसो त्ति॥

पुद्गल को मत निहारो, निहारो अपने पुण्य को। यदि पुण्य मणियाँ हैं, तो जिनवाणी बैंक है।

---

30. जिणालये चलचित्त- झुणीसुं भजणं णो गावेज्जा, भजणं सत्थीय-झुणीसुं होदव्वं॥

मंदिर जी में फिल्मी धुनों पर भजन नहीं गाना चाहिये, भजन शास्त्रीय धुनों पर होना चाहिये।

---

31. इत्थीओ वाणीए संजमं, सीमंते चारित्तं तहा मत्थगे सीलचित्तवत्थ-आवरणं धारेंतु, एदाणि हि तेसिं आभूसणाणि॥

महिलायें वाणी में संयम, माँग में चरित्र तथा माथे पर शील की चुनरी ओढ़े, ये ही उनके आभूषण हैं।

---

32. णियपुत्तं मा हिंसेहि। णियपुत्तं हण्णवंता हे माआ! तुमं सुमरेहि- जम्हि गेहम्हि सूदगो जायदे, तत्थ दुवाल-सदिवसम्हि सुद्धी होदि एवं आदघादे छम्मासस्स सूदगं होदि, किण्णु जम्हि गेहम्हि पुत्तहणणं कीरिज्जदे तत्थ आजीवणस्स सूदगो एवं कदावि सुद्धी ण होदि। माणवहिंसाए पावं तु बंधेहिदि॥

अपने लाल को लाल मत करो। अपन लाल को (ह) लाल करने वाली, हे माता! तुम इतना याद रखना कि जिस घर में सूतक हो जाये वहाँ बारह दिन में शुद्धि होती है और आत्मघात करने पर छह माह का सूतक होता है, परन्तु जिस घर में लाल का लाल किया जाता है वहाँ जीवन भर सूतक हो जाता है, कभी भी शुद्धि नहीं होती। मानव हिंसा का पाप तो लगता ही है।

---

33. जिणालयम्हि मेत्त-धम्मिग-आजोयणं होदव्वं ण दु सोंदरिय-उण्णयण-सागचेरि-पसिक्खण-चलचित्त-गायण-पहुदीहिं विसयग-गोट्ठी वा पसिक्खण-कज्जं॥

मंदिरजी में सौंदर्य निखार प्रशिक्षण, फिल्मी गानों आदि से सम्बन्धित गोष्ठी या प्रशिक्षण कार्यक्रम नहीं होना चाहिये, केवल धार्मिक आयोजन होना चाहिये।

---

34. जिणालयस्स णिम्मल्लं वा धम्मिगसंठाणाणं दव्वाणि च दाणकिददव्वाणि कदावि सगीय-कज्जम्हि णवि तिरियगदिं भुंजेहिसि॥

मंदिर जी का निर्माल्य या धार्मिक संस्थानों का द्रव्य और दान किया हुआ द्रव्य कभी भी अपने स्वयं के कार्य में मत लगाना, अन्यथा साठ हजार वर्षों तक तिर्यंच गति भोगना पड़ेगा।

---

35. जिणालयस्स भंडारगिहस्स धणं विहाकज्जम्हि- जहा वज्ज-साजसज्जा-विज्जुदादिकज्जेसुं मा संलग्गेहि। तेसिं धणाणं उवओगं। जिणिंददेवस्स पूजणादि-कज्जेसुं हि होदव्वं। उच्छवादि-आजोयणत्थं अण्णदव्वं संगहेदव्वं॥

मंदिर जी के गुल्लक के पैसे को व्यर्थ के कार्य में- बैंडबाजे में, साजसज्जा, बिजली आदि के कामों में मत लगाना। उन पैसों का उपयोग श्री जी की पूजन आदि कार्यों में ही होना चाहिये। उत्सव आदि आयोजनों के लिये अलग द्रव्य जुटाना चाहिए।

---

36. रयणत्तय-आराहणाए मग्गम्हि मा थंभेहि। दंसणीय-ठाणम्हि ण संचिट्ठेदि, मेत्तं पस्सिज्जदे। णिवसण-ठाणं तु सिद्धालयो होज्जा।।

रत्नत्रय की आराधना में कहीं रास्ते में रुक मत जाना। दर्शनीय स्थान में ठहरा नहीं जाता, केवल देखा जाता है। रहने का स्थान तो सिद्धालय हो।

---

37. अट्ठकम्माणं णट्ठम्हि हि आदा णिम्मलो होदि, अण्णहा दु तम्हि कज्जलं णवि णस्सेदि।।

आठों कर्मों के जलने पर ही आत्मा निर्मल हो पाती है, अन्यथा तो इस पर कालिख ही जमी रहती है।

---

38. अट्ठ-कट्ठस्स पलंगे संविट्ठ-पुरिसो। पुरिसो पुरिसो त्थि कट्ठं कट्ठमत्थि, पलंगो पलंगो त्थि। कट्ठे होदु वा पलंगे? पुरिस-भिण्णो, पलंग-भिण्णो; किण्णु संविट्ठ-पलंगे त्थि। इत्तियो लीणो णं विसरीअ पलंगे संविट्ठो। अट्ठ-कम्माणि संति तुमं इमेसुं लोट्टिज्जसे। जदा अंतिमसासो गेण्हसि तदा तुज्झ पलंगादो आमुंचित्तु भूमीए लुढावेहिह तदा तुम्हाणं कम्माणं पलंगो मुंचेहिसि। हंसो एगो गच्छेहिदि, लोहेणं अज्जिद-छिंदभिंद-कागिणी वि तुज्झेणं सह ण गच्छेदि, पुणो वि तुमं आजीवणं अट्ठकम्मेहिं अणभिण्णो।।

आठ-काठ की खाट पर पड़ा पुरुष। पुरुष, पुरुष है। काठ, काठ है। खाट, खाट है। काठ में हो कि खाट में हो? पुरुष

भिन्न है, खाट भिन्न है, पर पड़ा खाट पर है। इतना मस्त हो गया कि भूल गया कि खाट पर पड़ा है। आठ कर्म हैं, तू इन पर लेटा है। जब अंतिम साँस लेगा, तब तुझे खाट से उतार कर जमीन पर लिटा देंगे, तभी तेरी कर्मों की खाट छूट पायेगी। हंस अकेला चला जायेगा, लोभ से कमाई हुई फूटी कौड़ी भी तेरे साथ जाने वाली नहीं है, फिर भी तू जीवन भर अष्ट कर्मों से बेखबर रहा।

---

39. पलंगो रुच्चीअ, किण्णु सोहणं णवि दिज्जीअ, मणो भासीअ, इमेण पलंगादो आमुंचेहि भूमीए पाडेहि। भूमीए हि सिंगाडग-पूरणं करेदि, पलंगम्हि णत्थि। भो णाणी! सीलभगिणी करम्हि केसर-करपूरं धारित्ता उच्चिट्ठेदि, सिंगाडग-पूरणस्स एवं भत्ति-कलसो धारित्ता उच्चिट्ठेदि। अप्प-भावणा-सोहणं कुणेहि दु भव-सोहणं होहिदि॥

खाट सुंदर लग रही थी, पर शोभा नहीं दे रही थी, मन कह रहा था, इस खाट से उतार लो, भूमि पर डाल दो। भूमि पर ही चौक पूरा जाता है, खाट पर नहीं। भो ज्ञानी! शील की भगिनी हाथ में केशर, कपूर लिए खड़ी है, चौक पूरने के लिये और भक्ति का कलश लिये मुक्ति-वधू खड़ी है। अपनी भावना सुधार लो, तो भव सुधर जायेगा।

---

40. वंदणा होदि चलंताणं-चरणाणं ण दु विस्साम-करंत-चरणाणं। जे चरित्त भूमीए चलेंति, ते हि चरणाणि पक्खालेंति॥

विश्राम करने वाले चरणों की वंदना नहीं होती, वंदना होती है चलते हुये चरणों की। जो चरित्र की भूमि पर चलते हैं, वे ही चरण पखारे जाते हैं।

---

41. अवरसुहेणं दुही बहुला संति, अप्पदुहेणं दुही अप्पो। किंचण कहेंति- जं अम्हाण तं अम्हाण एवं जं तुज्झ तं तुज्झ। एयो कहेदि- तुज्झ वि तुज्झ एवं अम्हाण वि तुज्झ। भो णाणी! ण तुज्झ अत्थि, ण अम्हाण एवं ण अम्हाण अम्हाण, ण तुज्झ तुज्झ अत्थि। अम्हाण तुज्झ कारणं विहा जीवणं णस्सेदि। ''ण अम्हाण ण तुज्झ, इमे सव्वे मिच्छा-झंझडा॥''

पर के सुख से दुःखी ज्यादा हैं, अपने दुःख से दुःखी कम हैं। कुछ कहते हैं कि जो मेरा है, सो मेरा और जो तेरा है, सो तेरा। एक कहता है तेरा भी तेरा और मेरा भी तेरा। भो ज्ञानी! न तेरा है, न मेरा है, और न मेरा मेरा है न तेरा तेरा है। इस मेरा तेरा के चक्कर में व्यर्थ जीवन खो रहा है। ''न मेरा न तेरा, ये सब तो है झूठा झमेला।''

---

42. महावीरभयवं तु गच्छीअ, किण्णु सो वीरा छुट्टेज्जा। सो छुट्टीअ जिणवाणी-पिबमाणा ण दु मणवाणी-पिबमाणा॥

महावीर भगवान तो चले गये, पर वे वीरों को छोड़ गये। वे मनवाणी पीने वालों को नहीं, जिनवाणी पीने वालों को छोड़ गये।

---

43. दियंबरसमणा देहमणमुहादु वि मउणं हि हुंति। एय-परमाणुम्हि वि तेसिं मउणं णवि मुंचेज्जा, ते सव्वचागी हुंति॥

दिगंबर साधु तो तन से मौन, मन से मौन और मुख से भी मौन ही होते हैं। एक परमाणु पर भी उनका मौन नहीं खुलता, वे सर्वत्यागी जो हैं।

---

44. जिणालयम्हि सया तच्चचरियं हि कुणेहि। तच्च-चरिचासमए सगीयवयणं आगम-वण्णिद-सिद्धंतेहिमेव जाणाविज्जदे॥

मंदिर जी में हमेशा तत्त्व की ही चर्चा करें। तत्त्व-चर्चा करते समय अपनी बात आगम में वर्णित सिद्धांत द्वारा ही समझायें।

---

45. तुमं भवणम्हि णिवसेहि अहवा महलम्हि, जावं णिगसेहिदि दु सा सवजात्ता हि होहिदि, किण्णु जदि तेसिं चएदूणं समणो हुवेहिदि दु जीवणंतम्हि सिवजात्ता णिगसेहिदि॥

तुम भवन में रहो या महल में, जब निकलेगी तो वह शवयात्रा ही होगी, परन्तु यदि उन्हें त्यागकर मुनि बनोगे तो जीवनान्त पर शिवयात्रा निकलेगी।

---

46. णम्मदा-णदीए णिमज्जणित्तु किं भासेहि- 'णम्मदे हर' णिमज्जंतो णरो! मदं हरेहि। जीवणे वत्थुस्स कदा वि अहंकारं ण कुणेहि, जदिवि सा विज्जा वा वेहवं वा बलं वा णाणमेव। आगमे मदस्स अट्ठविहा वण्णिदा-णाण-पूया-कुल-जादि-बल-रिद्धि-तव-देहा।

नर्मदा नदी में डुबकी लगाकर क्या कहते हो- 'नर्मदे हर' यानि, नहाते हुए नर! मद को हर। जीवन में किसी चीज का कभी घमंड नहीं करना, चाहे वह विद्या हो, वैभव हो, बल हो या फिर ज्ञान ही क्यों न हो। आगम में मद के आठ प्रकार वर्णित हैं- ज्ञान, पूजा, कुल, जाति, बल, ऋद्धि, तप और शरीर।

---

47. जइणस्स किं अहिणाणं- चरियाए अहिंसा, दिट्ठीए अणेयंतो तहा वाणीए सियवादो॥

जैन की पहिचान क्या है- चर्या में अहिंसा, दृष्टि में अनेकांत तथा वाणी में स्याद्वाद होना।

---

48. अम्हे वीदरायी होहेदि, ण दु वित्तरायी॥

हमें वीतरागी बनना है वित्तरागी नहीं।

---

49. धम्मस्स दुण्णि णेत्ताणि ववहारणिच्छयणया य। इमेसिं एयं पि पुहं कुव्वेहिसि दु मोक्खमग्गो णवि सिज्झेहिदि॥

व्यवहार नय और निश्चय नय धर्म की दो आँखें हैं- इनमें से एक को भी अलग कर दोगे, तो मोक्षमार्ग नहीं बनेगा।

---

50. देवागमस्स उवासणा दु उत्तमा, किण्णु भासेहि- विणा गुरुं णाणं कुदो पत्तेहिसि? किं विसरीअ- एयलव्वो दु दोणाइरिय-मिदिगाए मुत्तिमेव सगीयगुरू मुणिदूणं धणुरविज्जा-णिपुणत्तं लाहीअ॥

देव और शास्त्र की उपासना तो उत्तम है परन्तु ये तो बताओ कि बिना गुरु के ज्ञान कहाँ से पाओगे? क्या भूल गये कि एकलव्य ने तो द्रोणाचार्य की मिट्टी की मूर्ति को ही अपना गुरु मानकर धनुर्विद्या में निपुणता प्राप्त की थी।

---

51. जदावि कोवि मुमुक्खू जिणवाणी-विसयम्हि जिण्णासं कुणेहि, तस्स समाहाणं समत्तपुव्वगं कुणेहि॥

जब भी कोई मुमुक्षु जिनवाणी के बारे में जिज्ञासा करे, उसका समाधान समतापूर्वक करें।

---

52. पडिदिणं किंचण समयो मउणं अवस्सं धारेहि। मउणसमए संकेदो वि णो हुज्जा, ण हि कंठेण झुणी फेडेहि॥

प्रतिदिन कुछ समय मौन अवश्य रहें। मौन के समय भी न हो, न ही गले से आवाज निकालें।

---

53. वद-उववास-पहुदिं जहा सामत्थं कुव्वेहि, किण्णु उववासो णिज्जलो होदव्वो। जल-गहणं अणुववासो। दुद्ध-गहणं तु एगासणमत्थि॥

व्रत उपवास आदि यथा-सामर्थ्य करें, परन्तु उपवास निर्जला होना चाहिये। जल लेना अनुपवास है। दूध लेना एकासन है।

---

54. उववास-एगासण-काले सांसारिगकज्जाहिंतो पुहं हुवेहि, मेत्त-तच्च-चरिचा-सज्झाय-सामयिगपहुदि-कज्जं च कुव्वेहि॥

उपवास या एकासन के समय सांसारिक कार्यों से विलग रहें, केवल तत्त्व चर्चा/स्वाध्याय/सामयिक आदि कार्य करें।

---

55. पस्स अंतोकरणं, ण दु चित्तं। चलचित्तजंतपहुदीए चित्तदंसणेण चित्तं अपवित्तं होदि॥

चित्र को मत देखो, चित्त को देखो। टी.व्ही. आदि पर चित्र देखने से चित्त अपवित्र होता है।

---

56. तुमं जिणालय-णिम्माण-दाणं तु देहि, किण्णु कोवि दुही-जीवं पुरो पस्सित्तु, करुणं पि कुव्वेहि॥

तुम मंदिर बनवाने को दान तो देना परन्तु किसी दुःखी जीव को सामने देख, करुणा भी कर देना।

---

57. 'सव्वाणि दिणाणि एयसदिसाणि णवि होंति', इण सुवण्णिमवयणं गिहम्हि सुहलाहेण सह लेहेहि॥

''सब दिन एक से नहीं रहते'' इस स्वर्णिम वाक्य को घर में शुभ लाभ के साथ लिख लेना।

---

58. साहुचरणेणं सह उवहरेहि साहुआयरणं पि। साहुआयरणं चित्तम्हि रक्खेहिसि दु चित्तम्हि विसुद्धी आगमेहिसि॥

साधु के चरण ही मत पकड़ो, साधु का आचरण पकड़ो। साधु का आचरण मन में रखोगे तो मन में विशुद्धि आयेगी।

---

59. सप्पो वि णियगिहे रिऊ होदूण गच्छेदि। हे माणव! णिय-सयल-कुडिलदा-कसायाणं मुंचित्तु सप्पसदिसो रिऊ गच्छेहि तदावि तुमं णियादगेह- समीवं गमेहिदि॥

सर्प भी अपने घर में सीधा होकर जाता है। हे मानव! अपनी समस्त कुटिलताओं और कषायों को छोड़ सर्प की तरह सीधा चल तभी तू अपने घर/आत्मा के पास जा पायेगा।

---

60. जिणालयम्हि देवदंसणेणं सह पडिदिणं सज्झायो वि आवस्सगो देवागमा मोक्खमग्गं देंति, गुरवो मग्गदंसणं देंति॥

मंदिर में देवदर्शन के अलावा प्रतिदिन स्वाध्याय करना भी आवश्यक है। देव और शास्त्र मोक्षमार्ग देते हैं, गुरु दिशा बतलाते हैं।

---

61. पावी पावं तु णिगूहेदि, ण दु पावफलं॥

पापी पाप को तो छुपा सकता है, परन्तु पाप के फल को नहीं छुपा सकता।

---

62. साहुवाणिं सत्थुवएसं च सोचेव सद्धापुव्वगं सुणेदि, जो आदविगासं इच्छेदि॥

संतों की वाणी/शास्त्रों का उपदेश वही श्रद्धापूर्वक सुनता है, जो आत्म विकास चाहता है।

---

63. सारला अवराणं णिंदा, सग-आलोयणा दुक्करा। जो णियप्पस्स समीवं पहुप्पेदि, तं अवराणं णिंदा भावो णवि होदि॥

दूसरों की निंदा करना आसान है, स्वयं की आलोचना कठिन। जो अपनी आत्मा के समीप पहुँच जाता है, उसे दूसरो की निंदा करने का भाव नहीं होता।

---

64. संबंधो जणसमूहो, एयत्त-विहत्तो दु सरूवो॥

संबंध भीड़ है, एकत्व विभक्त स्वरूप है।

65. जणसमूहम्हि समाही णवि होदि, समाहीए जणसमूहो हविज्जदे॥

भीड़ में समाधि होती नहीं, समाधि में भीड़ हो सकती है।

---

66. पज्जाया तक्कालिगा, आदा अजरो अमरो वा॥

पर्यायें तात्कालिक हैं, आत्मा अजर-अमर है।

---

67. णेत्ताणि किंचण पमाणं, आगमो पुण्ण-पमाणं। आगमो तिदीयं णेत्तं, समणो इमेणं णेत्तेणं गमेंति॥

आँखें किंचित् प्रमाण हैं, आगम पूर्ण प्रमाण है। आगम तीसरा नेत्र है, साधु इसी नेत्र से चलते हैं।

---

68. कोह-विपण्णत्तणं च अम्हाण मित्ताणि, एदाणि समदाए सहेहिदि दु संवर-णिज्जरा होहिदि, ण दु बंधो॥

क्रोध और विपन्नता हमारे मित्र हैं, इन्हें समता से सह लिया, तो बंध नहीं होगा। संवर और निर्जरा ही होगी।

---

69. धम्मणिमित्तेण किदा रायद्दोसा वि बंधकारणं॥

धर्म के निमित्त किया गया राग-द्वेष भी बंध का कारण है।

---

70. धीर-अधीराणं जदा मिच्चू णिच्छिदो दु धीरत्तेणं किदमरणं हि वरेण्णं॥

धीर तथा अधीर दोनों की जब मृत्यु निश्चित है, तो धीरता से किया गया मरण ही उत्तम है।

---

71. सुमणाणि ते सज्जेंतु जेसिं सु-मणो णो होह। जदि सु-मणो होज्जा दु सुमणाणि किमु सज्जेंति?॥

सुमन वे चढ़ायें, जिनके सु-मन न हों। यदि सु-मन होते तो सुमन क्यों चढ़ाते?

---

72. धणसंपत्तिमंत-अहिमाणीए समीवे वेहवस्स पुण्णं तु होदि, किण्णु भवरहिदत्तस्स पुण्णं णवि होदि॥

धन संपत्ति वाले अभिमानी के पास वैभव का पुण्य तो होता है, परन्तु बे-भव होने का पुण्य नहीं होता।

---

73. सिद्धंतभिण्णत्तं कित्तियं पि होहेदि, किण्णु मण-भिण्णत्तं कदावि मा कुव्वेदि॥

मत भिन्नता कितनी भी हो जाये परन्तु मन-भिन्नता कभी मत होने देना।

---

74. ण कोवि लहू ण गुरू होदि, सव्वस्स मज्झे अहंकारो उत्थेदि॥

न कोई छोटा न बड़ा, सबके बीच में अहंकार है खड़ा।

---

75. देहमणं च सुरक्खित्तु, जदि सुद्धीए ''णमो अरिहंताणं'' त्ति वि अज्झेदि दु असंखादकम्मणिज्जरा होहिदि॥

तन तथा मन को संभाल कर, शुद्धि से यदि ''णमो अरिहंताणं'' भी पढ़ लिया तो असंख्यात कर्मों की निर्जरा हो जाएगी।

---

76. णीरगालणमिव जदि णियपरिणामा वि गालेदु दु कल्लाणं णिच्छिदं हुवेदि॥

पानी छानने की तरह यदि अपने परिणामों को भी छान लें तो कल्याण निश्चित है।

---

77. भोगा पडि दिट्ठिं मुद्देहि एवं संजमं पडि मोडेहि दु सच्च-सुंदर-सिवं च लग्गेहिसि॥

भोगों की ओर दृष्टि बंद कर लो और संयम की ओर खोल लो, तो सत्य, सुन्दर तथा शिव लगेगा।

---

78. वेदणं वेदगभावेणं ण पस्सेहिसि, तं समत्तभावेणं सहेहिसि दु कम्मणिज्जरा होहिसि। वेदगभावो बंधमेव करेहिसि॥

वेदना को वेदक भाव से नहीं देखोगे, उसे समता भाव से सह लोगे तो कर्मों की निर्जरा हो जायेगी। वेदक भाव तो बंध ही करायेंगे।

---

79. वेज्जा णिय-ओसहगहे इणं वक्कं लिहावेंतु- णिमित्तो हं, कत्ता दु तुज्झ सुकम्मं॥

वैद्य अपने दवाखाने में वाक्य लिखवायें- मैं तो माध्यम हूँ, कर्ता तो तेरा सुकर्म है।

---

80. अवर-विसयम्हि भावकलुसीकरणेन तुं सगीयभवो विट्टालेहिसि॥

दूसरों के बारे में भाव बिगाड़ने पर तू अपना ही भव बिगाड़ेगा।

---

81. विणयो अंतरंगतवो, माणकसायणासो विणयेणं होदि॥

विनय अंतरंग तप है, मान-कषाय का मर्दन विनय से होता है।

---

82. समाहियाले समाहित्थं सयं चिंतणं कुव्वेधि मा सावेहि अहिगं। अहिगसावणेणं समाहीए संकिलेसत्तं हवदे॥

समाधिकाल में ज्यादा मत सुनाना, समाधिस्थ को स्वयं चिंतवन करने देना। ज्यादा सुनाने से समाधि में संक्लेश हो सकता है।

---

83. घणिट्ठमित्तं हि घणिट्ठसत्तू होज्जदे। कमढो दु पहु-पासणाहस्स सहोदरो आसी, जो तम्हि दसभवपज्जंतं उवसग्ग-किदो॥

घनिष्ठ मित्र ही घनिष्ठ शत्रु हो सकता है। कर्मठ तो भगवान पार्श्वनाथ का भाई था, जिसने उन पर दस भवों तक उपसर्ग किये।

---

84. तुं विण्णो वि हुवेहि य बुद्धिमंतो वि। विवेयहीण-विण्णा अत्थस्स अणत्थो करेहिंति॥

तुम विद्वान भी बनो और बुद्धिमान भी बनो। विवेकहीन विद्वान अर्थ का अनर्थ कर डालते हैं।

---

85. जस्स वंदणाए बंधो णो, तेसिं चरणेसुं मत्थगं विणमेहिदि॥

जिसकी वंदना में बंध न हो उन्हीं के चरणों में मस्तक झुकेगा।

---

86. जदि तुं णियमित्तं हि णो दु अवराणं मित्तं किं होहिसि॥

यदि तू अपना ही मीत नहीं तो दूसरों का मीत क्या होगा?

---

87. सीलो दु तच्चगंभीरेसुं हि णीरमिव पसज्जेदि॥

शील तो तत्त्व की गहराइयों में ही जल-सा रुकता है।

---

88. रायस्स रयो, दोसस्स मलिणत्तणं तहा कामस्स पंको जे णत्थि, ते मुणिराया होंति॥

राग की रज, द्वेष की मलिनता तथा काम का कीचड़ जिन्हें न हो, उन्हें मुनिराज कहते हैं।

---

89. णाणं णाणीणं च झाणं जोईणं सामिप्पं पदाणेदि॥

ज्ञान ज्ञानियों का सामीप्य प्रदान करता है, ध्यान योगियों का।

90. अवराण विसयम्हि असुहचिंतणं मुंचेज्जा, अयं सव्व-सारल्ल-संजमो॥

सबसे सरल संयम यह है कि दूसरों के बारे में अशुभ सोचना छोड़ दो।

---

91. एरिसं वदं गेण्हेहि- जदावि मत्थगं णमेज्जा, तं देवागमगुरुचरणेसुं णमेज्जा॥

ऐसा व्रत ले लेना कि जब भी मस्तक झुके, वह सच्चे देव, शास्त्र और गुरु के चरणों में झुके।

---

92. सड्ढा तेयालिग-गुणो, तम्हा सड्ढं तु कुव्वेहि, किण्णु सड्ढं तेसुं कुव्वेहि जे जम्मजरामरणादु मुत्तिपदाणम्हि समत्था होंतु॥

श्रद्धा त्रैकालिक गुण है, इसलिये श्रद्धा तो करना, परन्तु श्रद्धा उन पर करना जो जन्म, जरा और मृत्यु से छुटकारा दिलाने में समर्थ हों।

---

93. जस-वेहव-अहिगारा, एदे सच्चाणिरूवणं णवि कारिज्जदे॥

यश, वैभव और अधिकार ये तीनों सत्य का निरूपण नहीं होने देते।

---

94. तुज्झ चित्तं पसत्थं होहिसि, तदावि णिय-जीवणयाले आरोग्ग-विद्धावत्थं पस्सेहिसि एवं जदि समत्तं जादं। तु मोक्खमहलस्स मूलाधारो पवडेहिदि॥

चित्त प्रशस्त होगा, तभी अपने जीवनकाल में स्वस्थ्य वृद्धावस्था को देख पायेगा और यदि समत्व आ गया तो मोक्षमहल की नींव पड़ जायेगी।

---

95. एयहुत्तं असुहवियार-आगमे सदि सयलदेहं विसत्तं होदि॥

एक बार अशुभ विचार आने पर पूरा शरीर विषैला हो जाता है।

---

96. अणट्ठा तं विसं जं अट्ठा-अमिदं णस्सेदि॥

अनास्था वह जहर है जो आस्था के अमृत को नष्ट कर देता है।

---

97. भवणासट्ठं परिभमेहि। देवागमगुरुम्हि य अट्ठा खलु भव-भवजीवण-मरणं णस्सेहिदि॥

भव मिटाने के लिये भटकना नहीं। देव, शास्त्र और गुरु में आस्था ही भव-भव के जीवन मरण को मिटा देगी।

---

98. साहगं साहणाए सड्ढा हवेज्जा, एत्तियं साहणं कुव्वेहि॥

साधक को साधना पर श्रद्धा बनी रहे, इतनी साधना करना।

---

99. सोचेव मोक्खमग्गो जत्थ संजमो। जत्थ संजमो तत्थेव चरित्तमत्थि॥

वही मोक्षमार्ग है जहाँ संयम है। जहाँ संयम है वहीं चरित्र है।

---

100. तुवं भवणेसुं जदि णो संतिलाहो, दु वणं गच्छेहि, किण्णु वणम्हि वीदरायी होदूणं गच्छेहि, तदावि संतिलाहो होज्जा॥

तुम्हें भवनों में यदि शांति न मिले, तो वन को चले जाना, परन्तु वन में वीतरागी बन के जाना, तभी शांति मिल पायेगी।

---

101. समए समयं जाणीअ, दु पुणो समयाभावो ण होदि॥

समय पर समय को समझ लिया होता, तो फिर समय का अभाव न होता।

---

102. ''कारण-कज्ज-विहाणं''। विणा कारणेणं किंपि कज्जं णवि होदि॥

''कारण कार्य विधानं''। बिना कारण के कोई कार्य नहीं होता।

---

103. दीवपज्जलणं-पगाससब्भावो वा जुगवं किरियाओ तदेव जदा सगप्प-णाणदीवं पज्जलेहिसि दु आदा सम्मणाण-पगासेणं आलोगिदो होहिदि॥

दीपक का जलना तथा प्रकाश का होना युगपद क्रियाएँ हैं। इसी तरह जब अपनी आत्मा में ज्ञान का दीपक जलाओगे, तो आत्मा सम्यक्ज्ञान के प्रकाश से आलोकित होगी।

---

104. धण-संपत्तिमय-पुग्गलपिंडेसुं णो सहावलाहो, णेव भावलाहो वा॥

धन दौलत रूपी पुदगल के टुकड़ों में स्वभाव नहीं मिलता, भाव भी नहीं मिलता।

---

105. सम्मादिट्ठी कदं तु लहु-गुरुं च णवि करेदि, किण्णु णिय-चिंतणं गुरुं करेदि। जस्स चिंतणं गुरुं होदि, सोचेव सव्व-गुरू होदि॥

सम्यग्दृष्टि जीव कद को तो छोटा बड़ा नहीं कर सकता, परन्तु अपनी सोच को बड़ा कर सकता है। जिसकी सोच बड़ी होती है, वही सबसे बड़ा होता है।

---

106. देहपदणादो गुणट्ठाणादो णवि पडेदि, किण्णु भावपदणादो गुणट्ठाणादो णियमेणं पडेहिदि।।

तन के गिरने से गुणस्थान से नहीं गिरता, परन्तु भावों के गिरने से गुणस्थान से अवश्य गिर जायेगा।

---

107. जह एय-अहिकोसम्हि संगिहीद-धणाणि अण्ण-अहिकोसादो णिप्फडेहि, एमेव इणम्हि भवम्हि जं पुण्णं संगिहीदं करेहिसि तस्स अणंतगुणा अग्गभवे पाविज्जस्सि।।

जैसे एक बैंक में जमा रुपये किसी अन्य बैंक से निकाल लेते हो, इसी तरह इस भव में जो पुण्य जमा करोगे उसका अनन्तगुणा अगले भव में पा सकोगे।

---

108. खमा आदसहावो, दु कोहो विहावो।।

क्षमा आत्मा का स्वभाव है तो क्रोध विभाव है।

---

109. कम्माणि तु अचेदणाणि, ताणि तुज्झ ण वि पुक्केज्जा, तुं सयं कम्माणि पुक्केसि।।

कर्म तो अचेतन है, उन्होंने तुझे नहीं बुलाया, तूने स्वयं कर्मों को बुलाया है।

---

110. णाणिस्स दया असंकिलेसभावेणं होदि, जदिवि अण्णाणिस्स संकिलेसभावेणं।।

ज्ञानी की दया असंक्लेश भाव से होती है, जबकि अज्ञानी की संक्लेश भाव से।

---

111. भावविसुद्धीए जिणवाणिं सुणिज्जदे॥

परिणामों की विशुद्धि के लिये जिनवाणी सुनी जाती है।

---

112. तवस्सं तवस्साए ण कीरदे, रायदोसादो मुंचेदुं कीरदे॥

तपस्या के लिये तपस्या नहीं की जाती, तपस्या रागद्वेष छोड़ने के लिये की जाती है।

---

113. जहा दिट्ठी तहा सिट्ठी। जदि दिट्ठी सम्मं होदु दु सिट्ठी पुणो सम्मं होस्सदि॥

जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि। यदि दृष्टि सम्यक् हो जाये, तो सृष्टि फिर सम्यक् हो जायेगी।

---

114. भूदो दु एयपज्जाये पीडेदि, किण्णु मोहभूदो अणंतपज्जायेहिं पीडेदि॥

भूत तो एक पर्याय में लगता है, परन्तु मोह का भूत तो अनन्त पर्यायों से लग रहा है।

---

115. जो पुण्ण-पावाणि मुंचेदु तहा णियादम्हि रमेदु, सोचेव सम्म-साहगो॥

जो पुण्य व पाप दोनों को छोड़ दे तथा अपनी आत्मा में रमण करे, वही सच्चा साधक है।

---

116. दव्वस्स उप्पादवयं तु णवि रुंभेज्जदे, किण्णु जदि मणस्स, उप्पादवयरूव-विसयकसाया रुंभेदि दु कल्लाणं होज्जा॥

द्रव्य के उत्पाद-व्यय को तो नहीं रोका जा सकता, परन्तु यदि मन के उत्पाद-व्यय रूपी विषय-कषायों को रोक लिया तो कल्याण हो जायेगा।

---

117. सुर-सुंदरीए जदा चागं करेहिसि तदा सुद-सुंदरिलाहो होहिसि। हे भव्वजीव! णिय-एय-पज्जायो दु सुदसुंदरिं दिंतेसि, तदा तुमं सुदबंभम्हि रदं होहिसि॥

सुर-सुंदरी का जब त्याग करोगे, तभी श्रुत-सुंदरी प्राप्त होगी। हे भव्य जीव! अपनी एक पर्याय तो श्रुत-सुंदरी को दे दो, तभी तुम श्रुत-ब्रह्म में लीन हो पाओगे।

---

118. मोहस्स सुरापाणं किदं तहा रायस्स सुंदरीए रमीअ, तम्हा एत्तिया पज्जाया भुंजीअ। मोहराआ य चागं हि सेयकरं॥

मोह की सुरा का पान करता रहा तथा राग की सुंदरी में लीन रहा, इसीलिये इतनी पर्यायें भोगना पड़ीं। मोह और राग को छोड़ना ही श्रेयस्कर है।

---

119. वीसस्स जसकित्तीए सेवणं तु कदावि होदि, किण्णु णियसरूवस्स अणुभूदी मणुस्स-जम्मम्हि हि होदि॥

जगत की यश कीर्ति का भोग तो किसी भी जन्म में हो सकता है, परन्तु अपने स्वरूप की अनुभूति मनुष्य जन्म में ही हो सकती है।

---

120. जिणवाणी जग-कल्लाणी। इमीए अरुहवयणाणि, तम्हा मे पव्वज्जेमि। जेसुं अणारहद-विसयम्हि चरिचा, ता मे ण पव्वज्जेमि॥

जिनवाणी जगत-कल्याणी है। इसमें अर्हत् के वचन हैं, इसलिये मुझे स्वीकार है। जिसमें अनार्हत के बारे में बातें हों, वह मुझे स्वीकार नहीं है।

---

121. जस्स संभासणे आदतच्चं अणिहिदं, सो होदि वायालो, ण दु वत्ता॥

जिसके संभाषण में आत्म-तत्त्व निहित न हो, वह बकता तो हो सकता है परन्तु वक्ता नहीं हो सकता।

---

122. आगमणाणं अगाहं, जम्मजम्मंतरे वि कोवि इमत्तो ण वि तुस्सेहिदि॥

आगम का ज्ञान अगाध है, जन्मजन्मांतर में भी कोई इससे अघायेगा नहीं।

---

123. जिणवाणीए मम्मिग-पसंगा सुणंता सुणावंता य कदिधा मज्झ वि कंठो संवीदो, किण्णु हं णियं सुरक्खेमि। भो णाणी! अहं तुमं णेत्तेसुं णीर-पूरिदो पस्सेमि। इदं वयणं अण्णं- तुमं इमाणि बिंदुणिवादो णो, इदं वियारित्तु को वि किं कहेहिदि एवं जेसिं अस्सवो झरंति, ते सिग्घं तम्हा पुच्छेंति- कोवि किं कहेहिदि॥

जिनवाणी के मार्मिक प्रसंग सुनाते-सुनाते कई बार मेरा भी कंठ रुद्ध हो जाता है, पर मैं अपने आपको सँभाल लेता हूँ। भो

ज्ञानी! मैंने तुम्हें नेत्रों में नीर भरे देखा है, यह बात और है कि तुम इन्हें टपकाते नहीं हो, यह सोचकर कि ''कोउ का केहे'' (कोई क्या कहेगा), और जिनके आँसू टपक जाते हैं, वे जल्दी से इसलिये पोंछ लेते हैं कि कोउ का केहे।

---

124. कम्मसिद्धंतो कम्हिचिदवि दयं ण कुणेदि, इदं कम्मं भयवं-आदिणाहं आहारट्ठं छम्माह-पज्जंतं भामीअ॥

''कर्म सिद्धांत किसी को नहीं छोड़ता'', इसी कर्म ने भगवान आदिनाथ तक को आहार के लिये छह महीने तक घुमाया था।

---

125. सगणिण्णयो खलु सच्चं हवदे, तम्हा सयेण पुच्छणट्ठं समयं गवेसेहि॥

स्वयं का निर्णय ही सत्य हो सकता है, इसलिये स्वयं से पूछने के लिये समय निकालो।

---

126. अवरगिहे गच्छेहिसि दु तत्थ कहं णिवसेज्जा, इमा जिणवाणीमादा अम्ह सिक्खेदि। सा भासेदि- अवरगिहे णियभावा सरलं किच्चा गच्छेज्जा जदो तत्थ अण्णेणं णो परिपीडेज्जा॥

'पर घर' में जाओगे तो वहाँ कैसे रहना यह जिनवाणी माँ हमें सिखाती है। वह कह रही है कि पर घर में अपने परिणामों को सरल करके जाना ताकि वहाँ किसी से पिटना न पड़े।

---

127. पुण्णणाणे सदि मोक्खो णवि होदि। णाणादो जसो, दंसणादो सग्गसुहं तहा चारित्तादो पूया होदि। किण्णु मोक्खो इमेसुं तीसुं हि पत्तेदि॥

पूर्ण ज्ञान होने पर भी मोक्ष नहीं होता। ज्ञान से यश, दर्शन से स्वर्ग-सुख तथा चारित्र से पूजा होती है। परन्तु मोक्ष इन तीनों के होने पर ही प्राप्त होता है।

---

128. जे आदतच्चादो भिण्णा सुण्णा, ते दुरप्पा। जे आदतच्चम्हि लीणा, ते महप्पा तहा जे मोहं पि विसज्जेंति, ते परमप्पा॥

जो आत्म-तत्त्व से भिन्न हैं, शून्य हैं; वे दुरात्मा हैं, जो आत्म-तत्त्व में लीन हैं, वे महात्मा हैं तथा जो मोह को भी विसर्जित कर दें, वे परमात्मा हैं।

---

129. ''अहिंसा परमो धर्मः''- इमं वेदवक्कं समण-वेदिग-सक्किदीसुं समाणेण मुणिज्जदे, किण्णु इमस्स पालणं समणसक्किदीए अत्थपुण्णरूवम्हि कीरिज्जदे॥

''अहिंसा परमोधर्मः'' यह वेद वाक्य श्रमण तथा वैदिक दोनों संस्कृतियों में समान रूप से माना जाता है, परन्तु इसका पालन श्रमण संस्कृति में ही सार्थक रूप में किया जाता है।

---

130. चक्किगा-कज्जं तु इक्खुरस-णिक्कासणस्स य, रस उप्पादणस्स णो। सगप्पाणुभूदि-आणंदो पिच्छी-कमंडलम्हि णत्थि; णेव मुणिवेसम्हि। मुणिवेसो दु चक्किगा अत्थि, जा रसं णिक्कासेदि। रसं तु इक्खुम्हि, सगप्पाणुभूदी सो इक्खू जस्स रसं मुणिवेसरूपी-चक्किगाए णिक्कासदे॥

चरखी का काम तो गन्ने से रस निकालने का है, रस बनाने का नहीं है। स्वात्मानुभूति का आनंद पिच्छी में नहीं है, कमंडल में नहीं है, न ही यह मुनि-वेष में है। मुनि-वेष तो चरखी है जो रस निकालती है। रस तो गन्ने में है स्वात्मानुभूति वह गन्ना है जिसका रस मुनि-वेष रूपी चरखी से निकाला जाता है।

---

131. वाउ-चक्कवादो सएणं सह मग्गस्स सयलवत्थूहिं संधुणेदि। विसयाणं वाउ-चक्कवादो पुण्णभंडारं सएणं सह संधुणेहिदि॥

वायु का चक्रवात अपने साथ रास्ते की सब चीजों को उड़ा ले जाता है। विषयों की वायु का चक्रवात पुण्य के भंडार को अपने साथ उड़ाकर ले जायेगा।

---

132. जदा कसायमंदत्तणं तहा मिच्छत्तणासं होहिदि, तदा णाणस्स सुहोवओगो होहिदि॥

कषाय की मंदता तथा मिथ्यात्व की समाप्ति जब होगी, तभी ज्ञान का शुभ उपयोग होगा।

---

133. विसयकसायजाला अप्पाणं पज्जालेदि, अंतरंगम्हि डज्झावेदि, बहिधूमो वि णवि पस्सेदि॥

विषय-कषाय की ज्वाला आत्मा को दग्ध करती है, अंदर ही अंदर झुलसाती है, बाहर धुआँ भी नहीं दिखाई देता।

---

134. णाणं कागणेत्तं, जं सव्वं पडि पस्सेदि। आदा णाणस्स सामी। संसारस्स पत्तेय-आदा सुतंतो त्थि, तम्हा णाणधारासुतंतो त्थि। इमा सच्छंदा णवि हुज्जा॥

ज्ञान काक की आँख है जो सभी ओर देख सकती है। ज्ञान का स्वामी आत्मा है। संसार की प्रत्येक आत्मा स्वतंत्र है, इसलिये ज्ञान की धारा स्वतंत्र है। यह स्वच्छंद न हो पावे।

---

135. जस्स वाणी णिम्मला, किण्णु परिणदी णिट्ठुरा सो सम्मजीवो णवि मण्णदे॥

जिसकी वाणी कोमल हो परन्तु परिणति कठोर हो, वह सही व्यक्ति नहीं माना जाता।

---

136. कालो थोवो एवं बुद्धी दुब्बुद्धी जादा, तम्हा अहिगाहिग-सुदगहणं कुव्वेहि, तहेव जह तिण्हासमये णीरेणं सव्व-भाजणाणि आवूदि॥

काल थोड़ा है और बुद्धि दुर्बुद्धि हो चुकी है, इसलिये अभी जितना हो सके श्रुत को ग्रहण कर लो-ठीक वैसे ही जैसे तृष्णा के समय पानी से सभी बर्तनों को भर लेते हो।

---

137. जेणं उस्साहेणं संजमवदं गिण्हीअ, तेणं उस्साहेणं पालणं णवि कीरिज्जदे तम्हा समाहीए दुस्सज्झत्तणं आगमेदि, सा विद्दादि॥

जिस उत्साह से संयम-व्रत लिया था, उस उत्साह से पालन नहीं कर पा रहा, इसीलिये समाधि में कठिनाई आ रही है, वह बिगड़ रही है।

---

138. सम्मद्दंसणं अवहरंता चदु-चोरा कोह-माण-माया-लोहा य। चोरस्स कज्जं पगास-अभावकरणं। एमेव कसायाणं कज्जं वि हिदयपगास-अभाव-करणं अत्थि॥

सम्यक्-दर्शन को चुराने वाले चार चोर हैं- क्रोध, मान, माया और लोभ। चोर का काम प्रकाश को बुझाना है- इसी प्रकार कषायों का काम भी हृदय के प्रकाश को समाप्त करना है।

---

139. चिगिस्सालयम्हि फल-खीर-पहुदीणं विदरणं अहिंसा-अवर-सेवा य॥

अस्पतालों में फल, दूध आदि का वितरण करवा देना अहिंसा और पर-सेवा है।

---

140. वीदरायी-साहुस्स वीसे मित्तं तु तस्स पवित्तवाणी एव॥

वीतरागी साधु का विश्व में कोई मित्र है, तो वह है उसकी पवित्र वाणी।

---

141. ''न मे शत्रु न मे प्रिया''- जेसुं रायो ते मज्झ संति। जेसुं दोसो ते मज्झ सत्तू संति; एरिसं चिंतणं मुसा। जह अवराणं मज्झ णत्थि, तह मज्झ वि मज्झ णत्थि॥

''न मे शत्रु न मे प्रिया''- जिनमें राग है वे मेरे हैं, जिनमें द्वेष है वे मेरे शत्रु हैं, ऐसी सोच झूठी है। जैसे गैर मेरे नहीं हैं, वैसे मेरे भी मेरे नहीं हैं।

---

142. हं परियट्टीअ दु पुणो हं हं णो भासेमि। जदा हं परियट्टेहिमि, तदा णो कंठो णिग्गंथो बुल्लेहिदि॥

मैं बदल गया होता, तो फिर मैं मैं नहीं कहता। जिस दिन मैं बदल जायेगा, उस दिन कंठ नहीं, निर्ग्रंथ बोलेगा।

143. धम्मप्पस्स धम्मो पढमो दीसदे, पच्छादो धम्मप्पा॥

धर्मात्मा का धर्म पहिले दिख जाता है, धर्मात्मा बाद में।

---

144. सम्म-दियंबर-सावगचरिया मुणिराय-सदिसा होदि। समणा महव्वदी दु सावगा अणुव्वदी होंति॥

सच्चे दिगम्बर श्रावक की चर्या मुनिराज के समान होती है। साधु महाव्रती हैं तो श्रावक अणुव्रती होते हैं।

---

145. अम्हाण जेट्ठुअम-सत्तू पमादो तह जेट्ठुअम-मित्तं उस्साहो। जम्हि उस्साहसत्ति-वाऊ भरेज्जा सो कित्तियं पि संजमरूव-भारं संवहेदि, अण्णहा सयं-भारो वि भारो संलग्गेदि॥

आलस्य हमारा सबसे बड़ा शत्रु है, तो उत्साह सबसे बड़ा मित्र। जिसके अन्दर उत्साहशक्ति की हवा भर जाये, वह कितना भी बोझा (संयम का) ढो सकता है, अन्यथा स्वयं का बोझा भी बोझ लगता है।

---

146. समण-सक्किदीए ण भगवंतं णिम्माणेंति, णेव आमंतेंति। एत्थ दु भगवं होदूणं णिवसिज्जदे॥

श्रमण संस्कृति में न भगवान् बनाये जाते हैं, न बुलाये जाते हैं। यहाँ तो भगवान् बनकर रहा जाता है।

---

147. तच्चाणुभूदीए जाणिज्जदे- अम्ह अमिलत्तं लहेज्जा वा मिट्ठुण्णं। चेदण्ण-णाणधणमिट्ठुण्णेणं मुहं हरिसेदि, किण्णु विसय-अमिलत्तम्हि संमुज्झेदि; तम्हा जोइमुहं पप्फुल्लेदि, विसयीजीवस्स संमुज्झेदि॥

तत्त्व की अनुभूति से समझ में आ जाता है कि हमें खटाई मिल रही है कि मिठाई। चैतन्य-ज्ञान के धन की मिठाई से चेहरा खिल जाता है, परन्तु विषयों की खटाई में मुरझा जाता है, यही कारण है कि योगी का चेहरा खिला रहता है, जबकि विषयी का मुरझाया।

---

148. सुक्कवायस-चरणाणि दु सुंदराणि, किण्णु आयरण-सुंदरं णत्थि दु सो असंजदो॥

बगुले के चरण तो सुन्दर हैं, परन्तु आचरण सुन्दर नहीं है, वह असंयमी है।

---

149. सज्झायेणं झाणं, झाणेणं कल्लाणं होदि॥

स्वाध्याय से ध्यान होता है, ध्यान से कल्याण होता है।

---

150. जत्थ चारित्तछत्त-सब्भावो, तत्थ विसयकसायतावो णवि संतावेदि।

चारित्र की छतरी जहाँ आ जाये, वहाँ विषय-कषाय की तपन सता ही नहीं सकती।

---

151. वग्गणा-पहावो अम्हे आगमे दिस्समाणो। गोदम-इंदभूदीसामी महावीरेणं जुद्धत्थं गच्छीअ, किण्णु भगवद-महावीरस्स वग्गणादो दु तस्स सिस्सं हुवीअ॥

वर्गणाओं का प्रभाव हमें आगम में देखने को मिलता है। गौतम इन्द्रभूति-स्वामी महावीर भगवान से लड़ने गये थे, लेकिन ज्यों ही महावीर भगवान की वर्गणायें उनसे टकराईं तो वे उनके शिष्य बन गये।

---

152. सम्मादिट्ठी जीवो सग-लक्खं पडि सददं अग्गणी हविज्जदे। जो पज्जायो एयहुत्तं चुदो, सो पुणो ण मिलेहिदि। फलं एयहुत्तं तुट्टिय पुणो साहाए णो जुंदेदि। पज्जाय-णासस्स पुव्विं फलबीयमिव सदिसं पज्जाय-बीयं किच्चा गेण्हेहि।

सम्यक्-दृष्टि जीव अपने लक्ष्य की ओर निरंतर अग्रसर होता रहता है। जो पर्याय एक बार च्युत हो जाये, वह फिर नहीं मिलेगी। फल एक बार टूटकर फिर डाली पर नहीं लगता। पर्याय के छूटने के पहिले फल के बीज के समान पर्याय का बीज बनाकर रख लेना।

---

153. मणीसिणो! आउकम्मं पाणं हरेहि, तस्स पुव्विं कसायहरणं कुव्वेहि। कसायहरणं पुरिसत्थकिदं। जो कसाया धंसेज्जा, तस्स मोक्खो णिच्छिदो॥

मनीषियो! आयुकर्म प्राणों का हरण करे उसके पूर्व कषायों का हरण कर लेना। कषायों का हरण पुरुषार्थ-कृत है। जिसने कषायों को भगा दिया, उसका मोक्ष निश्चित है।

---

154. जेहिं हत्थेहिं जिणिंद-अहिसेगो होदि, तेहिं हत्थेहिं संकप्पीहिंसणं कहं कीरिज्जदे॥

जिन हाथों से भगवान का अभिषेक होता है, उन हाथों से संकल्पी हिंसा कैसे की जा सकती है?

---

155. हे राग! हं तुज्झ पस्सेमि। चडगा णियरायवसादु बालग-मुहम्हि धण्णकणा खिव्वीअ, किण्णु हे चडगा! जं दिणं तुज्झ बालगाणं पंखा जायंति, ते तुज्झ मुंचेहिंति एवं तुज्झ मुहे हिंसाए विणा किंचिवि सेसो णवि हुज्जा ॥

हे राग! मैंने तुझे देखा है। चिड़िया, अपने रागवश बच्चों के मुख में दाने को रख रही थी, परन्तु हे चिड़िया! जिस दिन तेरे बच्चों के पंख निकल आयेंगे, वे तुझे छोड़ देंगे और तेरी चोंच में हिंसा के अलावा कुछ भी शेष नहीं रहेगा।

---

156. जिणिंद-अहिसेगुवरंतं मुत्तिं सम्मओ अवमज्जंति, जम्हा जीवा ण जायंतु एवं णेव पडिमा गलेज्जा। तहेव पुग्गलस्स पावरूवीणीरं सग-सुकम्मेहिं सम्मओ पुच्छेदु, कसायस्स एयो वि बिंदू पुग्गलम्हि णो संलग्गेज्जा॥

भगवान के अभिषेक के बाद मूर्ति को अच्छी तरह से पोंछ लेते हैं ताकि जीव उत्पन्न न हों और न ही प्रतिमा गले। उसी प्रकार पुद्गल के पाप रूपी पानी को अपने सत्कर्मों से अच्छी तरह पोंछ लेना, कषाय की एक भी बूँद पुद्गल पर न लगी रह जाये।

---

157. णयवादा कित्तिया वि होंतु, किण्णु णाव-वादम्हि मा जियेहि। णावो होदु दु णायं करावेज्जा। णयो णायट्ठं होदि, णावट्ठं णो॥

नय वाद कितने भी हो जायें, पर न्याव (लड़ाई) वाद में मत जीना। न्याव हो जाय, तो न्याय कराना पड़ता है। नय न्याय के लिये होता है, न्याव के लिये नहीं।

---

158. कस्स चिद् वि पज्जायदंसणं वि रायो त्थि। जदा तं पुत्तस्स कण्णा गवेसणत्थं गच्छीअ, सो वि रायो आसी॥

किसी की पर्याय को देखना भी राग है। जब तू बेटे के लिये कन्या को देखने गया था, वह भी राग था।

---

159. णयचक्कं आसयेहि, मिच्छत्तं मुंचेहि; धम्मचक्कं जंतेहि॥

नय-चक्र का आलंबन लो, मिथ्यात्व को छोड़ दो, धर्म-चक्र को थाम लो।

---

160. परिणामजुद्ध-विमोयणं अइदुक्करं। जिणवाणीरंगा-रोहणस्स पुव्विं परिणामजुद्धाणि मुंचावेहि। चित्तम्हि एरिसं चिंतणं कुज्जा- कलुसिदकालम्हि वसित्तु वि हं असुहभावेसुं ण वि णिवसेहिमि।।

परिणामों की जंग को छुड़ाना बड़ा कठिन है। जिनवाणी का रंग चढ़ाने के पूर्व परिणामों की जंग छुड़ा लेना। मन में ऐसा विचार कर लेना कि खोटे काल में रहकर भी मैं खोटे परिणामों में नहीं रहूँगा।

---

161. सुदवियप्पस्स णामो णयो। णयं णयो ण मुणिदूणं पमाणं मण्णेंति, तदा विवादो होदि। अण्ण-पुरिसं जो सव्वण्हू णो हुवीअ, तस्स णयो पमाणं ण होदि। णयो संपुण्णो णवि भासेदि, एयंसो हि णयो। जो माआ सो अण्णस्स धम्मणी दु अण्णस्स भगिणी होहिदि। जणणी दु जणगो वि होहिदि। इमेसिं मज्झे विवाद-पण्हं हि कत्थ जम्मेदि।।

श्रुत के विकल्प का नाम नय है। नय को नय न मानकर प्रमाण मान लेते हैं, तभी झगड़ा होता है। किसी पुरुष को जो सर्वज्ञ नहीं बना, उसका नय प्रमाण नहीं होता। नय पूरा नहीं कह पाता, एक अंश ही नय कहलाता है। जो माँ होगी, वह किसी की पत्नी होगी, तो किसी की बहिन होगी। जननी है तो जनक भी होगा। इनके बीच में झगड़े का प्रश्न ही कहाँ पैदा होता है?

---

162. चदुत्थकालो कित्तियो सेट्ठो आसी, वयं तम्हि समये वि आसी, किण्णु तम्हि समये अम्ह णियसेट्ठभावेसुं णासी, तम्हा कलुसिदकाले वि संति। अवगुणेसुं वि गुणो होदि। कालो कलुसिदे सदि वि भावकलुसिदो ण होदव्वो।।

चौथा काल कितना चोखा था, हम उस समय भी थे, परन्तु उस समय हम अपने चोखे भावों में नहीं थे, इसीलिये खोटे काल में बैठे हैं। खोटे में भी चोखा होता है। काल खोटा है, तो होने दो, पर भाव खोटे नहीं होना चाहिये।

---

163. महुरं भासेहि, सिट्ठं भासेहि। अम्हो महुरं भासेदव्वं माहुरिय-गुणेणं पीदप्पगुणो उप्पण्णेदि, जो सद्दस्स उवओगम्हि णिब्भरो।।

मिष्ट बोलो, शिष्ट बोलो। हमें हमेशा मीठा बोलना चाहिये। माधुर्यगुण से प्रीतात्मगुण उत्पन्न हो जाता है, जो शब्द के प्रयोग पर निर्भर है।

---

164. पिट्ठम्हि मिट्ठं मिलेदु दु मिट्ठण्णं णिम्मेदि। एवं जदि आदम्हि आयरण-मिट्ठं मिल्लेहि दु जीवणं मिट्ठण्णेणमहिगं महुरं होज्जा।।

पिष्ट (आटा) में मिष्ट (मीठा) मिल जाये, तो मिष्ठान्न बन जाता है। इसी तरह यदि आत्मा में आचरण की मिष्ट मिल जाये, तो जीवन मिष्ठान्न से अधिक मधुर हो जाये।

---

165. णरयस्स चउ-दारा रत्तिभोयणं सुरापाणं संधाणं पर-इत्थीगमणं च। हे मुमुक्खू! इणं चागमेव सेयं॥

नरक के चार द्वार हैं- रात्रि-भोजन, सुरा-पान, संधान और पर-स्त्री गमन। हे मुमुक्षु! इन्हें छोड़ना ही श्रेयस्कर है।

---

166. पुज्जं तदा हुवेहिसि, जदा हिदयादो सयलविगारा पुहं होहिंति॥

पूज्य तभी बन पाओगे जब हृदय से समस्त विकार दूर हो जायेंगे।

---

167. ''मद्यं हरति मदं''। मदिराचागं मदं णस्सेदि। जम्हि देसे अतिहिणो दुद्ध-वच्छल्ल-पेमं च, तत्थ अदु काच-कूवीओ पेयावेज्जंति। समयसारस्स रक्खा तदा होहिदि, जदा मद-मदिराए रक्खणं होदु॥

''मद्यं हरति मदं''। मदिरा का त्याग मद हटा देता है। जिस देश में अतिथियों को दुग्ध, वात्सल्य तथा प्रेम पिलाया जाता था, वहाँ अब बाटलें पिलाई जाने लगी हैं। समयसार की रक्षा तभी हो पायेगी जब मद व मदिरा से रक्षा हो जाये।

---

168. पोग्गल-आगस्सणम्हि णियपरिमाणा कलुसिदा मा कुणेहि॥

पुद्गल के आकर्षण में अपने परिणामों को खोटा मत करो।

---

169. कणय-परिक्खा दिढीकरणेणं च माणवपरिक्खा णिवसणेणं होदि। जावं कओ णिवसणं णो कम्हिचिद विसयम्हि सुणित्तु किंपि णिण्णयं मा कुव्वेहि॥

सोने की परीक्षा कसने से होती है, आदमी की परीक्षा बसने से होती है। जब तक कहीं बस न लो, किसी के बारे में सुनकर कोई निर्णय मत कर लेना।

---

170. वीसो दु रिऊ एव, अम्ह केवल-णियवक्कदिट्ठिं रिउं कादव्वं दिट्ठि-रिउ-करणं हि माणचागं। तदा को वि लहू व गुरू ण अणुहवेहिदि॥

जगत् तो सीधा ही है, केवल हमें अपनी वक्रदृष्टि सीधी करनी है। दृष्टि सीधी करना अर्थात् अहंकार तजना। तब कोई छोटा या बड़ा नहीं लगेगा।

---

171. सीदामादाए अगणिपरिक्खा हुवीअ दु अगणिकुंडम्हि कमलं विसट्टीअ। तदा वीसासो जादो पुण्ण-संजम-सीलो य कदावि ण संजलेदि॥

सीताजी की अग्नि-परीक्षा हुई तो अग्नि-कुंड में कमल खिल गया। तब विश्वास हुआ कि पुण्य, संयम और शील कभी जलता नहीं।

---

172. वीसासघादी कस्सचिद वि सहोदरो णत्थि, ण मण्णेहि दु वीसासघादं किच्चा पस्सेहि। जेण पुरिसेण वीसासघादं किदं, तेसिं गिहं धंसंतं पस्सेहि॥

''दगा किसी का सगा नहीं है, न मानों तो कर के देखो।'' जिन लोगों ने दगा किया है, उनके घर उजड़े, देखो।

---

173. मुद्दाए धम्मो णत्थि, किण्णु धम्म-मुद्दा अवस्सा होदि। मेत्त-दियंबरमुद्दाए केवलणाणं ण वि होदि। पिच्छी-कमंडलुरासी संलग्गीअ, मेत्त-दव्वमुद्दाए भयवं णो हुवेसि॥

भेष में धर्म नहीं है, परन्तु धर्म का भेष अवश्य होता है। दिगम्बर भेष मात्र से केवल ज्ञान नहीं होता। पिच्छी, कमंडलु के ढेर लग गये, द्रव्य-भेष मात्र से भगवान नहीं बन सकते।

---

174. छलेण छलं हि होदि, छलम्हि सुद्धप्पा ण वि होदि। तुं णिय-सहोदर-धणं हि दु विमोचेहिसि, तस्स भग्गं कदावि ण विमोचेहिसि। पुणो हे सहोदर! छलं किमु कुव्वेसि?॥

छल से छल ही होता है, छल में शुद्धात्म नहीं होता। तू अपने भाई का धन, पैसा ही तो छुड़ा पायेगा, उसके भाग्य को कदापि भी नहीं छुड़ा पायेगा। फिर, हे भाई! छलावा क्यों करता है?

---

175. भाऊ सुणेहि-सहोदर-सगं कट्ठं दिंतेदि, किण्णु णिय-सहोदरं कट्ठं ण वि देदि। सो सियालादु पच्छा सहोदरं मा मुंचेहि। चेदण्णप्पा तुज्झ सहोदरो य देहं तुज्झ सियालो त्थि॥

भैया सुनो- भाई स्वयं को कष्ट दे देता है, परन्तु अपने भाई को कष्ट नहीं देता। सो, साले के पीछे भैया को मत छोड़ देना। ''चैतन्य आत्मा तेरा भैया है और शरीर तेरा साला है।''

---

176. जदि सरोवरे बुडेसु दु पाणा गच्छेहिह, किण्णु सुदसरोवरे बुडेसु दु कम्मपाणा गच्छेहिह, सिवो होज्जा सेसो॥

यदि सरोवर में डूबे तो प्राण जायेंगे, परन्तु यदि श्रुत-सरोवर में डूबे तो कर्मों के प्राण जायेंगे, शिव बच जायेगा।

---

177. जो णाणदंसणजुत्तो सो जीवो। जम्हि णाणदंसणाभावो सो जडो॥

जो ज्ञान दर्शन-युक्त है वह जीव है। जिसमें ज्ञान-दर्शन का अभाव है वह जड़ है।

---

178. सुहं मोक्खम्हि, ण दु बंधम्हि। पसु-पक्खी वि बंधणं इच्छेहि, पुणो हे मणुस्स! तुं किमु मोहरूवी-बंधणम्हि बंधेहि?

बंध में सुख नहीं, सुख मोक्ष में है। पशु-पक्षी भी बंधन में नहीं रहना चाहते, फिर हे मनुष्य! तुम क्यों मोह-रूपी बंधन में बंधे हो?

---

179. परिपूरिदं बीसो परिपूरेदि। जस्स चारित्तघड-परिपूरिदो तं वीसो पुज्जेदि। चारित्तपरिपूरिदघडो सिद्धसिलं पडि गच्छेदि। जो घडो रित्तो होदि, सो णिगोदभूमीए णिवसेदि॥

भरे को दुनिया भरती है। जिसके चारित्र का घट भरा होता है, उसे दुनिया पूजती है। चारित्र से भरा घट सिद्धशिला की ओर जाता है। जो घट खाली होता है, वह निगोद की भूमि पर पड़ा रहता है।

---

180. तुज्झ कुडी उवज्जणेणं णो कामणा-सरासणेणं टुट्टेसि। हे मुमुक्खु! उह-वयणेहिं णियरक्खणं कुज्जा पढमा कामणा य विदीया कामिणी। किंचण कामणाए मरीअ दु किंचण कामिणीए मरीआ जे कामणा-कामिणिणो मुंचीअ ते भवादु मुच्चीअ॥

कमर नहीं टूटती कमाने से, कमर टूटती है तेरी कामना की कमान से। हे मुमुक्षु! अपनी दो बातों से रक्षा करना- एक है कामना और दूसरी है कामिनी। कुछ कामना में मर गये, कुछ कामिनी में मर गये, जो कामना कामिनी को छोड़ गये वो संसार से तिर गये।

---

181. देहपाणा सुवयण-काओ य, किण्णु चेदणपाणा सम्मदंसण-णाण-चारित्ताणि अत्थि॥

तन का प्राण सद-वचन और काय है, पर चेतन का प्राण सम्यक्-दर्शन, सम्यक्-ज्ञान तथा सम्यक्-चारित्र है।

अणुवादग-पसत्थी

अमिद-बिंदु-गंथस्स किदियारो गणाइरिय-विरागसागरस्स आणाणुवट्टिविणेयो, वत्थुमहाकव्वकत्ता, सुदसंवड्ढगपट्टाइरियो विसुद्धसायरो त्थि। एवं इमस्स गंथस्स संपादणं पाइगमत्तंड-पाइगविज्जाविसणी पाइग-विज्जागुरु-जेट्ठसमणसुदसंवेगी-महासमण-आदिच्चसायरेण किदं। गुरुगुणाणुरायी-दियंबर-समण-सुदप्पिय-अपमिदसायर-मुणिणा गुरुपसाएणं आगमाणुऊलवयणाणि संजोयित्तु अस्स अलोगिग-गंथस्स पाइगाणुवादं किदं।

वीर-णिव्वाणं 2551 विक्कमसंवद 2082 मए पोसमासे किण्हपक्खे दसमीए अडिगंडजोए, चित्ताणक्खत्ते बुधवारे अदिसयजुत्त-सीयलणाहजिणदेवस्स चरणपादमूले तहा पाइगविज्जाविसणी-महासमण-आदिच्चसायरस्स एवं सहज-सरल-समण-सहजसायर-मुणिस्स साणिज्झे विदिसाणयरे मंगलाचरणं गंथारंभं च किदं।

अयं गंथो वीरणिव्वाणं 2551 विक्कमसंवद 2082 पोसमासे सुक्कपक्खे दसमीए पम्मजोए भरणीणक्खत्ते गुरुवारे भोवालणयरे संपुण्णो।

अस्स गंथस्स पाइगअणुवादं सुद्धाद-बोहट्ठं, जिणसासणस्स अच्छुण्ण-णाण-परंपरा-पवट्टणट्ठं, णियगुण-सुद्धकरणट्ठं च किदं मए। जावं इदं सासय-जीवदव्वं तावं अयं गंथो पुढवीए जयेदु। एवमेव मंगलभावणेण सह गंथस्स पाइग-अणुवादं किदं मए।।

।। णमो बुद्धि-रिसीणं ।।

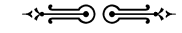

अनुवादक की प्रशस्ती

अमृत-बिंदु नामक इस ग्रंथ के कृतिकार गणाचार्य विरागसागर जी महाराज के आज्ञानुवर्ती शिष्य, वस्तुत्वमहाकाव्य के कर्त्ता, श्रुतसंवर्धक, पट्टाचार्य विशुद्धसागर जी महाराज हैं। और इस ग्रंथ का संपादन प्राकृतमार्तंड, प्राकृत विद्या व्यसनी, प्राकृत विद्यागुरु, ज्येष्ठ श्रमण, श्रुतसंवेगी महाश्रमण आदित्यसागर जी महाराज ने किया है। गुरुगुणानुरागी दिगंबर श्रमण श्रुतप्रिय अप्रमितसागर मुनि ने गुरुप्रसाद से आगमानुकूल वचनों को संजोकर इस अलौकिक ग्रंथ का प्राकृतानुवाद किया।

वीर निर्वाण 2551 वि.सं. 2081 पौषमास में, कृष्ण पक्ष में दशमी तिथि, अतिगंड योग में, चित्रा नक्षत्र में, बुधवार के दिन, अतिशय युक्त श्री शीतलनाथ जिनदेव की चरण पादमूल में तथा प्राकृतविद्या व्यसनी, महाश्रमण आदित्यसागर मुनि एवं सहज सरल श्रमण सहजसागर मुनि के सानिध्य में विदिशा नगर में इस ग्रंथ का मंगलाचरण किया।

यह ग्रंथ वीर निर्वाण 2551 वि.सं. 2081 पौषमास में, शुक्ल पक्ष में, दशमी तिथि, पद्म योग में, भरणी नक्षत्र में, गुरुवार के दिन, भोपाल नगर में संपूर्ण हुआ।

इस ग्रंथ का प्राकृतानुवाद मैंने शुद्धात्म बोध की प्राप्ति के लिये, जिनशासन की अक्षुण्णज्ञान परंपरा को चलाने के लिये किया है। जब तक यह शाश्वत जीव द्रव्य है, तब तक यह ग्रंथ इस धरा पर यूँ ही जयवंत रहे। इस ही मंगलभावना के साथ प्राकृत अनुवाद किया है।

।। बुद्धि-ऋषियों के लिये नमस्कार हो ।।

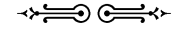

विशुद्धरत्न श्रुतप्रिय मुनि श्री अप्रमितसागर जी द्वारा रचित साहित्य-श्रम

I मौलिक रचना साहित्य—

*** प्राकृत भाषा में**

1. अप्पसारो
2. सम्मग्ग-चिंतणं
3. पणवीस-कल्लाण-भावणा
4. आदणाण-थुदी
5. विसुद्ध-थुदी
6. आदिच्च-थुदी
7. साहु-परमेट्ठि-थुदी
8. अज्झप्प-णीदी

*** संस्कृत भाषा में**

9. विशुद्ध-स्तवनम्
10-12. सुविशुद्धाष्टकं स्तोत्रम् 1,2,3
13. सुगुरुविशुद्ध-स्तवनम्
14. जिनवाणी स्तुतिः
15. श्री जिनचतुर्विंशति स्तोत्रम्

*** हिन्दी भाषा में**

16. वारसाणुवेक्खा
17. आदिनाथ स्तोत्र
18. जिन-जिनवाणी (3000 से अधिक पद्य)
19-21. साधुवचनं (हाईकू)-1,2,3
22. मनन
23. मंथन

24. मर्यादा
25. दशलक्षण
26. परिवर्तन
27. आत्मसृजन
28. सम्बोधन (क्षपक के लिये)
29. शब्द अपने
30. अपनी गूंज
31. अपनत्व
32. अहसास
33. संवेदनसही
34. मेरे गुरु (भाग-1)
35. मेरे गुरु (भाग-2)
36. मेरे गुरु (भाग-3)
37. संस्कार
38. उद्‌बोधन
39. उपदेश
40. उद्‌गार
41. अमृत मार्ग
42. शब्दामृत
43. मेरा जीवन
44. मंतव्य
45. लक्ष्य
46. अप्रमित है अहिंसा
47-51. समझे चेतन-1,2,3,4,5

II अनुवादित रचना साहित्य

प्राकृत भाषा में

52. विसुद्धवयणामिदं
53. तच्चबोहो
54. बोहि-सुत्तं
55. सार-सुत्तं

III संकलित साहित्य

56. व्यसन रहस्य
57. आदित्यवचनं
58. सम्बोधन

IV संपादित साहित्य में

59. भावत्रयफलप्रदर्शी (आ. श्री कुंथुसागर जी कृत)
60. धर्म परीक्षा (आ.श्री अमितगति स्वामी कृत)
61. सच्चत्थ-बोहो (आ. श्री विशुद्धसागर कृत)
62. झाणज्झयण-पाहुड (आ. श्री कुंदकुंदस्वामी कृत)

V श्रुतसंवेगी श्रमण आदित्यसागर जी कृत साहित्य का संपादन

63. वंदना-पथ
64. पुरानी बातें (भाग-1,2,3)
65. जीवन-सूत्र
66. शिक्षा-सूत्र
67. आदिच्च-किरिया-सायरो
68. आदिच्च-किरिया-सायरो
69. अंतर्ध्वनि
70. अंतर्मन की बातें
71. अपने लिये
72. कर्म-रहस्य (भाग- 1,2)
73. संकल्प
74. भक्तामर-विधान
75. आध्यात्मिक-प्रबंधन
76. ॐ Ignoraay नमः
77. घोर Ignoraay नमः
78. गुरु-शिष्य (भाग-1,4)
79. सही बातें (भाग-1-50)
80. जीवन नीति
81. स्तोत्र संग्रह
82. तीर्थंकर-विज्ञान